

संस्कृत साहित्य-संनमाला वा मल्लप्रवर्तनी गन्

पच्चीस वोल

स्वाध्यायार
विज्ञप मुनि शास्त्री, मादिय गन्



संनमति ज्ञानपीठ, ध्यागरा.

व्याख्याकार :

विजय मुनि शास्त्री, साहित्य रत्न

प्रकाशक :

मन्मथि ज्ञान पीठ, आगरा

मुद्रक .

प्रेम प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

प्रथम प्रवेश :

सन् १९६०

मूल्य :

पचास नये पैसे

पश्चिम घोल * एक

मू
ल्
या
रु
न

— मुचो ३ मुनि

० 'जैन दर्शन' के मूल भूत सिद्धान्तों का मान बरने वाले प्रत्येक व्यक्ति का मानात्कार सर्व प्रथम इसी संपुनम ग्रन्थ में होता है। यही वह मूलात्मक ग्रन्थ है, जिसको हृदयंगम कर, दर्शन शास्त्र की गहराई में उतरा जाता है, और इसी के माध्यम से प्रागम ग्रन्थों के विज्ञान मार्ग का पार किया जाता है।

० इस दृष्टि से यह संपुनम ग्रन्थ प्रयाप्त मूल्यवान है। इस ग्रन्थ की व्याख्या भव तर प्राप्त नहीं थी। अतः कोमल मनि बालकों को इस का रहस्य समझने में, बड़ी प्रसुविधा थी इस व्याख्या से उक्त समस्या का हल पा गया—एक सुन्दर रूप में।

० मेरा विश्वास है, इस मूल भूत ग्रन्थ की व्याख्या लिखकर श्री विजय मुनि जी ने तत्त्व जिज्ञासुओं का काफी उपकार किया है। व्याख्या पैली सुन्दर, सरल और सरल है। इससे बालक से लेकर बृद्ध तक सभी-वर्ग उठा सकते हैं।

प्रकाशक की ओर से

'पच्चीस बोल' को नये रूप में, पाठको के हाथों में समर्पित करते हुए हम महान् हर्ष है। यह एक लघु, पर साथ ही महत्व पूर्ण मिद्धान्त ग्रन्थ है। सन्त और गृहस्थ प्रायः सभी इसको याद करते हैं। शास्त्र के गुरु गम्भीर ज्ञान को समझने के लिए पच्चीस बोल एक चाबी है।

लाला मन्खनलाल जी हमारी समाज के एक अनुभवी एवं वयोवृद्ध श्रावक हैं। आपकी यह बहुत दिनों से अभिलाषा थी कि पच्चीस बोल पर एक लघु व्याख्या भी हो, जो सरल एवं सुबोध भाषा में हो। आप ने अपनी यह भावना उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्र जी महाराज की सेवा में व्यक्त की। फलतः उपाध्याय श्री जी महाराज ने अपना स्वास्थ्य ठीक रहने के कारण यह कार्य अपने सुयोग्य शिष्य विजय मुनि जी को करने का आदेश दिया।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में लाला मन्खनलाल जी ने जो श्रम महामत्ता की है, हमारे लिए हम लाला जी का सम्बन्ध की ओर से धन्यवाद करते हैं। आशा है, भविष्य में भी उनकी ओर से हम इस प्रकार की सहायता मिलती रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक पाठशाला, विद्यालय और स्कूल के छात्रों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। छात्र एवं छात्राएँ यदि इस पुस्तक का पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे, तो हमारा यह प्रयाग सफल होगा।

मनी—सोनाराम जैन

पच्चीस वोल

[मूल]

१

बोल पहला • गति चार

- | | |
|--------------|--------------|
| १ नरक गति | ३ मनुष्य गति |
| २ तिर्यच गति | ४ देव गति |

★

२

बोल दूसरा • जाति पाच

- | | |
|---------------------|---------------------|
| १ एकेन्द्रिय जाति | ३ त्रिन्द्रिय जाति |
| २ द्वीन्द्रिय जाति | ४ चतुरिन्द्रिय जाति |
| ५ पञ्चेन्द्रिय जाति | |

★

३

बोल तीसरा काय छह

- | | |
|--------------|---------------|
| १ पृथ्वी काय | ४ वायु काय |
| २ अप् काय | ५ वनस्पति काय |
| ३ तेजस् काय | ६ अक्षय काय |

★

४

बोल चौथा • इन्द्रिय पाच

- | | |
|--------------------|------------------|
| १ श्रोत्र इन्द्रिय | ३ घ्राण इन्द्रिय |
| २ चक्षुष् इन्द्रिय | ४ रसन इन्द्रिय |
| ५ स्पर्शन इन्द्रिय | |

★

५

बोल पाँचवाँ • पर्याप्ति छह

- | | |
|-----------------|-----------|
| १ आहार | पर्याप्ति |
| २ शरीर | पर्याप्ति |
| ३ इन्द्रिय | पर्याप्ति |
| ४ श्वामोच्छ्वास | पर्याप्ति |
| ५ भाषा | पर्याप्ति |
| ६ मन | पर्याप्ति |

★

६

बोल छठा : प्राण ढग

- | | |
|--------------------|----------|
| १ श्रोत्र इन्द्रिय | बल प्राण |
| २ चक्षुष् इन्द्रिय | बल प्राण |

- | | | |
|----|------------------|----------|
| ३ | घ्राण इन्द्रिय | बल प्राण |
| ४ | रसन इन्द्रिय | बल प्राण |
| ५ | स्पर्शन इन्द्रिय | बल प्राण |
| ६ | मनो - | बल प्राण |
| ७ | वचन | बल प्राण |
| ८ | काय | बल प्राण |
| ९ | श्वासीच्छ्वास-बल | प्राण |
| १० | आयुष्य | बल प्राण |

★

७

बाल मातृगौ • शरीर पांच

- | | | |
|---|---------|------|
| १ | औदारिक | शरीर |
| २ | वैक्रिय | शरीर |
| ३ | आहारक | शरीर |
| ४ | तैजस | शरीर |
| ५ | कार्मण | शरीर |

★

बौल आठरॉ : योग पन्डह

चार मन के

- १ सत्य मनो - योग
- २ असत्य मनो - योग
- ३ मिश्र मनो - योग
- ४ व्यवहार मनो - योग

चार वचन के

- १ सत्य वचन - योग
- २ असत्य वचन - योग
- ३ मिश्र वचन - योग
- ४ व्यवहार वचन- योग

सात काय के

- १ औदारिक काय - योग
- २ औदारिक-मिश्र काय - योग
- ३ वैक्रिय काय - योग
- ४ वैक्रिय-मिश्र काय - योग
- ५ आहारक काय - योग
- ६ आहारक-मिश्र काय - योग
- ७ कामण काय - योग

बौद्ध नौगों उपयोग तारह

पाँच ज्ञान

- | | | | |
|---|-------------|------------|-----------------|
| १ | मति ज्ञान | ३ | अवधि ज्ञान |
| २ | श्रुत ज्ञान | ४ | मन पर्याय ज्ञान |
| | ५ | केवल ज्ञान | |

तीन अज्ञान

- १ मति अज्ञान
- २ श्रुत अज्ञान
- ३ अवधि अज्ञान (विभग ज्ञान)

चार दर्शन

- | | | | |
|---|----------------|---|------------|
| १ | चक्षुर् दर्शन | ३ | अवधि दर्शन |
| २ | अचक्षुर् दर्शन | ४ | केवल दर्शन |

रसन इन्द्रिय के पाच विषय

१ अम्ल रस	३ कटु रस
२ मधुर रस	४ कषाय रस
५ तिक्त रस	

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

१ शीत स्पर्श	५ लघु स्पर्श
२ उष्ण स्पर्श	६ गुरु स्पर्श
३ रूक्ष स्पर्श	७ मृदु स्पर्श
४ स्निग्ध स्पर्श	८ कर्कश स्पर्श

★

१३

गोल तेरहवों दश प्रकार का मिथ्यात्व

१	जीव को	अजीव	समझना	मिथ्यात्व
२	अजीव को	जीव	समझना	मिथ्यात्व
३	धर्म को	अधर्म	समझना	मिथ्यात्व
४	अधर्म को	धर्म	समझना	मिथ्यात्व
५	साधु को	असाधु	समझना	मिथ्यात्व
६	असाधु को	साधु	समझना	मिथ्यात्व

- ७ समारम्भ का माक्षमार्ग समझना मिथ्यात्व
 ८ मोक्षमार्ग का समारम्भ समझना मिथ्यात्व
 ९ मृत्यु या अमृत्यु समझना मिथ्यात्व
 १० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

★

१४

पॉल नॉटवॉर्क नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

- | | |
|-----------------|----------------|
| १ जीव तत्त्व | ४ आग्रय तत्त्व |
| २ अजीव तत्त्व | ५ मयूर तत्त्व |
| ३ पृथ्वी तत्त्व | ६ निजरा तत्त्व |
| ४ पाप तत्त्व | ७ बन्ध तत्त्व |

८ मोक्ष तत्त्व

जीव तत्त्व के शीवह भेद

- | |
|--------------------------------|
| १ सूक्ष्म एषन्द्रिय पर्याप्त |
| २ सूक्ष्म एरेन्द्रिय अपर्याप्त |
| ३ वादर एरेन्द्रिय पर्याप्त |

४	वादर एकेन्द्रिय	अपर्याप्त
५	द्वीन्द्रिय	पर्याप्त
६	द्वीन्द्रिय	अपर्याप्त
७	त्रीन्द्रिय	पर्याप्त
८	त्रीन्द्रिय	अपर्याप्त
९	चतुरिन्द्रिय	पर्याप्त
१०	चतुरिन्द्रिय	अपर्याप्त
११	अमज्ञी पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१२	असज्ञी पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त
१३	सज्ञी पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१४	मज्ञी पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त

अजोव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद

- | | | | |
|---|--------|---|--------|
| १ | स्कन्ध | २ | देश |
| | | ३ | प्रदेश |

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद

- | | | | |
|---|--------|---|--------|
| १ | स्कन्ध | २ | देश |
| | | ३ | प्रदेश |

आकाशास्ति काय के तीन भेद

१ स्कन्ध २ देश

३ प्रदेश

१ दशवा काल

पुद्गलास्ति काय के चार भेद

१ स्कन्ध

३ प्रदेश

२ देश

४ परमाणु

पुण्य तत्त्व के नव भेद

१ ज्ञान पुण्य

५ वस्त्र पुण्य

२ पान पुण्य

६ मन पुण्य

३ स्थान पुण्य

७ वचन पुण्य

४ शय्या पुण्य

८ काय पुण्य

९ नमस्कार पुण्य

पाप तत्त्व के अठारह भेद

१ प्राणातिपात

४ मथुन

२ मृषावाद

५ परिग्रह

३ अदत्तादान

६ क्रोध

७	मान	१३	अभ्याख्यान
८	माया	१४	पैगुन्य
९	लोभ	१५	पर-परिवाद
१०	राग	१६	रति-अरति
११	द्वेष	१७	मायामृषा
१२	कान्ह	१८	मिथ्यादर्शन

आलव तत्त्व के बीस भेद

पाच अन्न

१	प्राणातिपात	३	अदत्तादान
२	मृषावाद	४	मैथुन
	५	परिग्रह	

पाच इन्द्रिय

१	श्रोत्र इन्द्रिय - प्रवृत्ति
२	चक्षुष् इन्द्रिय - प्रवृत्ति
३	घ्राण इन्द्रिय - प्रवृत्ति
४	रसन इन्द्रिय - प्रवृत्ति
५	स्पर्शन इन्द्रिय - प्रवृत्ति

पाच वाक्य

- १ मिथ्यात्व आत्मद रसना ।
- २ अविरति आत्मव रसना ।
- ३ प्रमाद आत्मव
- ४ कपाय शान्तव
- ५ अशुभ योग शान्तव

तीन वाक्य

- १ मन - प्रवृत्ति
- २ वचन - प्रवृत्ति
- ३ काय प्रवृत्ति

दो अयनता

- १ भाण्डोपकरण, वाजना मे
- २ सूचि कुशाग्रमान, वाजना मे

सवर तत्त्व के दोन भेद

पाच व्रत

- १ प्राणातिपात विरमव
- २ मृपावाद - विरमव

- ३ अदत्तादान - विरमण
 ४ अग्रह्यचर्य - विरमण
 ५ परिग्रह - विरमण

पाच इन्द्रिय

- १ श्रोत्र उन्द्रिय - निग्रह
 २ चक्षुष् उन्द्रिय - निग्रह
 ३ त्राण उन्द्रिय - निग्रह
 ४ रसन इन्द्रिय - निग्रह
 ५ स्पर्शन इन्द्रिय - निग्रह

पाच सवर

- १ सम्यक्त्व सवर
 २ विरति सवर
 ३ अप्रमाद सवर
 ४ अकपाय सवर
 ५ शुभ योग सवर

तीन योग

- १ मनो - निग्रह
 २ वचन - निग्रह
 ३ काय - निग्रह

दा यतना *

- १ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना ।
- २ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना ।

निर्जरा तत्त्व के बारह भेद

- १ अतश्न तप
- २ ऊनोदरी तप
- ३ भिक्षाचरी तप
- ४ रम-परित्याग तप
- ५ काय क्लेश तप
- ६ प्रति मलीनता तप
- ७ प्रायश्चित्त तप
- ८ विनय तप
- ९ वैषावृत्य तप
- १० श्वाध्याय तप
- ११ ध्यान तप
- १२ व्युत्सग तप

बन्ध तत्त्व के चार भेद

- १ प्रकृति बन्ध
- २ स्थिति बन्ध

- ३ अनुभाग वन्द्य
४ प्रदेश वन्द्य

माक्ष-तत्त्व के चार भेद

- | | |
|----------------|------------------|
| १ सम्यग् ज्ञान | ३ सम्यक् चारित्र |
| २ सम्यग् दर्शन | ४ सम्यक् तप |

★

१५

गोल पन्द्रहवों • आत्मा आठ

- | | |
|-----------|-------|
| १ द्रव्य | आत्मा |
| २ कषाय | आत्मा |
| ३ योग | आत्मा |
| ४ उपयोग | आत्मा |
| ५ ज्ञान | आत्मा |
| ६ दर्शन | आत्मा |
| ७ चारित्र | आत्मा |
| ८ वीर्य | आत्मा |

★

बोल मोलहराँ • टण्डक चीवीम

सात नरक का एक दण्डक

१	रत्न	प्रभा
२	शर्करा	प्रभा
३	गलुका	प्रभा
४	पङ्क	प्रभा
५	धूम	प्रभा
६	तम	प्रभा
७	महातम	प्रभा

दश भवन-पति के दश दण्डक

१	असुर	कुमार
२	नाग	कुमार
३	मुषण	कुमार
४	विद्युत्	कुमार
५	अग्नि	कुमार
६	द्वीप	कुमार
७	उदधि	कुमार
८	दिशा	कुमार

६	परन	रुमार
१०	स्तनित	रुमार

पाच म्थावर के पाच दण्डक

१	पृथ्वी	काय
२	अप्	वाय
३	तेजम्	नाय
४	वायु	काय
५	यनस्पति	काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक

१	द्वीन्द्रिय
२	त्रीन्द्रिय
३	चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक

१	तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
१	मनुष्य का एक दण्डक
१	व्यन्तर देव का एक दण्डक
१	ज्योतिष देव का एक दण्डक
१	वैमानिक देव का एक दण्डक

बोल मतरद्वयों . लेश्या छद्

- १ कृष्ण लेश्या
- २ नील लेश्या
- ३ वापोत्त लेश्या
- ४ तजो - लेश्या
- ५ पद्म लेश्या
- ६ शुक्ल लेश्या

★

१ =

बोल अष्टाग्रहणों . दृष्टि तीन

- १ सम्यग्दृष्टि
- २ मिथ्यादृष्टि
- ३ मिथ्य दृष्टि

★

चौल उन्नीमर्गों : च्यान चार

- १ आर्त ध्यान
- २ रौद्र ध्यान
- ३ धर्म ध्यान
- ४ शुभल ध्यान

✽

००

चौल त्रीमर्गों - पङ्क द्रव्य के तीम भेद

धर्मास्तिकाय के पांच बोल

- १ द्रव्य मे एक
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल मे आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी ।
- ५ गुण से चलन गुण,
जल मे मछली का दृष्टान्त

अधर्मास्तिकाय के पांच बोल

- १ द्रव्य मे एक
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण

- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अम्पी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी,
- ५ गुण में स्थिर गुण,
श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

आकाशास्ति काय के पाच बोल

- १ द्रव्य में एक
- २ क्षेत्र में लोवालोव प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अम्पी, अजीव, शाश्वत, लोका-लोक-व्यापी,
- ५ गुण में अवकाश-दान गुण,
दूध में बताने का दृष्टान्त

काल द्रव्य के पाच बोल

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र में अडाई द्वीप प्रमाण
- ३ काल में आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अम्पी, अजीव, शाश्वत, अडाई द्वीप-वर्ती

- ५ गुण से वर्तना गुण,
नये को पुराना करे,
नये पुराने कपड़े का दृष्टान्त

जीवान्तिकाय के पाच बोल

- १ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अम्पी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से उपयोग गुण,
चन्द्र की कला का दृष्टान्त

पुद्गलास्तिकाय के पाच बोल

- १ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-सहित
रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से पूरण-भालन-गुण,
मिलते-वितरते, बादल का दृष्टान्त

बोल इस्मीमवों , राशि दो

- १ जीव राशि
- २ अजीव राशि

*

२२

बोल पाईमवों श्रावक के बारह व्रत

पाच अणुव्रत

- | | | |
|---|------------|----------|
| १ | अहिंसा | अणु व्रत |
| २ | मृत्य | अणु व्रत |
| ३ | अस्तेय | अणु व्रत |
| ४ | ब्रह्मचर्य | अणु व्रत |
| ५ | अपरिग्रह | अणु व्रत |

तीन गुण व्रत

- १ दिशा व्रत
- २ भोगोपभोग-परिमाण व्रत
- ३ अनर्थ-दण्ड-विरमण व्रत

चार शिक्षा व्रत

- १ सामायिक व्रत
- २ देशावकाशिक व्रत
- ३ पीपध व्रत
- ४ अतिथि मविभाग व्रत

★

२३

बोल तेईसवाँ : साधु के पाँच महाव्रत

- १ अहिंसा महाव्रत
- २ सत्य महाव्रत
- ३ अस्तेय महाव्रत
- ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
- ५ अपरिग्रह महाव्रत

★

२४

बोल चौबीसवाँ : प्रत्याख्यान के ४६ भंग

- अंक ११ मग नव—एक करण, एक योग से कथन
- | | | | |
|---|------|-------|--------|
| १ | करूँ | नहीं, | मन से |
| २ | करूँ | नहीं, | वचन से |
| ३ | करूँ | नहीं, | काय से |

अक २१ भग नव-दो करण एक योग से कथन

- १ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से
- २ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से
- ३ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं, काय से
- ४ कहँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
- ५ कहँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
- ६ कहँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से
- ७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
- ८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
- ९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक २२ भग नव-दो करण दो योग से कथन

- १ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, वचन से
- २ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, काय से
- ३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से, काय से
- ४ कहँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
- ५ कहँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
- ६ कहँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से, काय से
- ७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
- ८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
- ९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से

अक २३ भग तीन—दो करण तीन योग से कथन

१ कर्हं नही, कराऊं नही,
मन से, वचन से, काय से

२ कर्हं नही, अनुमोडूँ नही,
मन से, वचन से, काय से

३ कराऊं नही, अनुमोडूँ नही,
मन से, वचन से, काय से

अक ३१ भग तीन—तीन करण एक योग से कथन

१ कर्हं नही, कराऊं नही, अनुमोडूँ नही, मन से

२ कर्हं नही, कराऊं नही, अनुमोडूँ नही, वचन से

३ कर्हं नही, कराऊं नही, अनुमोडूँ नही, काय से

अक ३२ भग तीन—तीन करण दो योग से कथन

१ कर्हं नही, कराऊं नही, अनुमोडूँ नही,
मन से, वचन से

२ कर्हं नही, कराऊं नही, अनुमोडूँ नही,
मन से, काय से

३ कर्हं नही, कराऊं नही, अनुमोडूँ नही,
वचन से, काय से

अक ३३ भ ग एक—तीन करण, तीन योग से कथन
१ कर्त् नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही
मन से, वचन से, काय से

✱

२५

गोल पञ्चीमर्षों . चारित्र पाच

- १ सामायिक चारित्र
- २ डेवोपस्थापन चारित्र
- ३ परिहार विशुद्धि चारित्र
- ४ सूक्ष्म सपराय चारित्र
- ५ यथाख्यात चारित्र

✱

पञ्चीस वील

[व्याख्या]

घोल पहला • गति चार

- | | |
|----------------|--------------|
| १ नरक गति | ३ मनुष्य गति |
| २ तिर्यञ्च गति | ४ देव गति |

व्याख्या

ससार में अनन्त जीव हैं। साधारण व्यक्ति के लिए सबका जानना और वर्णन कर सकना सम्भव नहीं है। कवली-भगवान् ही अपने अनन्त ज्ञान से अनन्त जीवों को जान-देस सकते हैं। अल्पज्ञ जीव में वैसा सामर्थ्य नहीं है, कि वह समस्त जीवों को जान सके, देख सके। क्योंकि अल्पज्ञ जीव के पास ज्ञान का साधन है—इन्द्रिय। इन्द्रियो द्वारा सूक्ष्म और अनीन्द्रिय पदार्थों को जाना नहीं जा सकता।

फिर, एक अल्पज्ञ आत्मा जीवों का परिज्ञान कैसे करे? शास्त्रकार ने इसी प्रश्न के समाधान के लिए अनन्त जीवों का चार विभागों में वर्गीकरण कर दिया है। ससार के समस्त जीव इसमें समाहित हो जाते हैं। ससारस्य एक भी जीव एसा नहीं रहता जो इस घोल में न आ जाय।

लोक भाषा में गति का अर्थ है—गमन, चलना फिरना। एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना। परन्तु यहाँ पर गति का

एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव से दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूरा करके देव भव में जाने को प्रस्थान करता है तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव भव में रहता है, तब तक की वह अवस्था—विशेष देव गति कहलानी है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यञ्च गति और नरक गति के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

‘नाम कर्म’ की उत्तर प्रकृतियां, ‘गति नाम’ एक प्रकृति है। उस गति नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक में, कभी तिर्यञ्च में, कभी मनुष्य में और कभी देव योनि में जन्म ग्रहण करता है। अतः ये सब संसारी जीव की अनुद्ध पर्याय हैं, जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती हैं। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नहीं।

जैन दर्शन में, आत्मा के दो रूप माने गए हैं—मुक्त और ससारस्थ। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहित हो चुका है। वह शुद्ध है, निरञ्जन है, मल-रहित है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार ससार से मुक्त हो गया, वह फिर कभी ससार में नहीं आता। मुक्त एवं सिद्ध आत्माएँ अनन्त हैं और अनन्त हागीं।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कम-बन्धनों में बद्ध हैं, वे अनुद्ध हैं, कर्म-सहित हैं, मल सहित हैं। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओं को ससारम्य कहते हैं। प्रस्तुत बोल में इन्हीं ससारो आत्माओं का वर्णन किया गया है। ससारो आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।

नारक

नरक भूमि के बागो जीव नारक बह जाते हैं। नरक भूमि सात हैं, जो इस प्रकार हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पद्मप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महानम प्रभा।

नरक एक एका स्थान है, जहाँ जीव अपने अनुम कर्मों का फल पाता है। नारक जीवों में अशुद्ध वेश्या और अशुद्ध परिणाम होते हैं। नरक को भेदना तीन प्रकार की होती है—क्षेत्र स्वभाव जन्म क्षीतादि, परस्परद्वन्द्व और अमुरजन्म।

अमनी जीव मरकर पृथ्वी भूमि तक, भुजपरिसरों दूसरी तक, पक्षि तीसरी तक, मिह चौथी तक, सर्प पाँचवी तक, नारी छठी तक और मनुष्य एवं मत्स्य मानवी तक जा सकते हैं।

नारक जीव मरकर नारक और देव नहीं बन सकते। तिर्यञ्च और मनुष्य ही बन सकते हैं।

तिर्यञ्च

नारक, मनुष्य और देव का छोड़ कर शेष जिनने भी संसारी जीव है, वे तिर्यञ्च बह जाते हैं। नरक-गति की तरह तिर्यञ्च गति भी पापमूलक मानी जाती है। तिर्यञ्च जीवों के तीन भेद हैं—जन्मचर, स्थानचर, और श्रेचर।

एकेन्द्रिय और द्विकेन्द्रिय जीव भी तिर्यञ्च गति में समा विष्ट हो जाते हैं। मनुष्य, देव तथा नारक को छोड़कर शेष समस्त पनेन्द्रिय अग जीव भी तिर्यञ्च गति में हैं। लोभ

भाषा म, पशु, पक्षी और कीट-पतंगे आदि जीव तिर्यञ्च हैं। तिर्यञ्च अपने शुभाग्भुषण कर्मों के अनुसार प्रायः चारों गणियों में जा सकते हैं।

मनुष्य

शास्त्र में मनुष्य-जन्म को सर्व श्रेष्ठ और सर्व-श्रेष्ठ कहा गया है। इस का मुख्य कारण यह है, कि मनुष्य अपनी संयम साधना से मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है, जबकि अन्य गतियों में यह सम्भव नहीं है। गुण-स्थान की दृष्टि से भी नारक और देव चतुर्य गुण-स्थान से आगे नहीं बढ़ सकते। तिर्यञ्च का विशास पाचवें से आगे नहीं। परन्तु मनुष्य में समस्त गुण-स्थान सम्प्रवृत्त हैं। अतः मनुष्य जन्म सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वश्रेष्ठ है।

जन्म के आधार पर मनुष्या के दो भेद हैं—गर्भज और समूच्छिद्यम। माता और पिता के संयोग से जो जन्म मिलता है, वह गर्भज कहा जाता है। मनुष्य और तिर्यञ्च में ही यह होता है। माता और पिता के संयोग के बिना जो मल-मूत्रादि में मानवाकार प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, वे समूच्छिद्यम कहे जाते हैं। मनुष्य की तरह तिर्यञ्च भी समूच्छिद्यम होते हैं और ये दोनों मनोरहित होने से असजी ही होते हैं।

भूमि के आधार पर मनुष्या के दो भेद किये गए हैं—भोग-भूमि तथा कमभूमि। भोगभूमि वह है, जहाँ अस्मिन् कर्म, मर्त्सि-कर्म और कृपि-कर्म नहीं होते। और जहाँ ये होने हैं, वह कमभूमि है।

संस्कृति और सभ्यता के आधार पर भी मनुष्या के भेद किये गये हैं। जैसे कि प्राय और म्लेच्छ। मनुष्य भी मर कर प्राय चारो गतिया में जा सकता है।

देव

देव शब्द भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में विरपरिचित है। देवगति में सुख माना गया है। वहाँ शुभ लक्ष्या और शुभ परिणाम मान गए हैं। वहाँ प्राय मातावेदनीय काम का उदय माना गया है।

देवों के चार भेद हैं—मवन पति, व्यन्तर, उयोनिष्ठ और वैमानिक। देव मरकर न देव हो सकता है और न नारक। किन्तु अपने शुभाशुभ कर्मों के कारण मनुष्य या तिर्यञ्च गति में जन्म ले सकता है।

गतिया के कारण

सक्षेप में नरक गति के कारण है—महारम्भ, महापरिग्रह। तिर्यञ्च गति का कारण है—माया। मनुष्य गति का कारण है—अल्पारम्भ, अल्पपरिग्रह। देव गति का कारण है—मराम मयम, मयमामयम—श्रावकत्व बालतप, और शकाम निर्जरा आदि।



नाम कर्म को उत्तर प्रकृतिया में, जति नाम कर्म भी एक प्रकृति है। उसके उदय में ही जीवा को एकेन्द्रिय आदि म जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

एकेन्द्रिय जीव—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति।

द्वीन्द्रिय जीव—लट, मीप, घस कृमि, घुण आदि।

त्रीन्द्रिय जीव—चीटी, चीचड, जू, लीस, मकोडा आदि।

चतुरिन्द्रिय जीव—मकखो, मच्छर, भवरा, बिच्छू आदि।

पंचेन्द्रिय जीव—नारक, पंगु आदि, मनुष्य, देव।

★

३

रोल तीमरा काय छह

१ पृथ्वी काय

५ वायु काय

२ अप् काय

५ वनस्पति काय

३ तेजस राय

६ अम काय

व्याख्या

विभिन्न प्रकार के पुद्गलो से बने शरीरो के द्वारा जीव के जा विभाग होने हैं, उन्हे काय कहने हैं।

पृथ्वी है काय जिन की, वे जीव पृथ्वी काय हैं। अप (जल) है काय जिनकी, वे जीव अप काय। तेजस (अग्नि) है काय जिन



५

गोल पाँचवों : पर्याप्ति छह

- | | |
|----------------------|---------------------------|
| १ आहार पर्याप्ति | ८ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति |
| २ शरीर पर्याप्ति | ५ भाषा पर्याप्ति |
| ३ इन्द्रिय पर्याप्ति | ६ मन पर्याप्ति |

व्याख्या

पर्याप्ति आत्मा की एक शक्ति विशेष है। आत्मा जिस शक्ति से पुद्गलो को ग्रहण करता है और उन्हे शरीर आदि म्य में परिणत करता है, उसे पर्याप्ति कहते हैं। इस के छह भेद हैं।

आहार पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव आहार योग्य वास्तु पुद्गलो को ग्रहण कर उन को खल और रस रूप में बदलता है।

शरीर पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव रस रूप में परिणत आहार को रक्त, मास, मज्जा और धीय आदि धातुओं में बदलता है।

इन्द्रिय पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव सान धातुओं को स्पर्शन, रसन आदि इन्द्रियो में बदलता है।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव श्वास और उच्छ्वास योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, और छोड़ता है।

भाषा पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव भाषा योग्य भाषा वगणा के पुद्गलो को ग्रहण करके भाषा रूप में परिणत करके छोड़ता है।



८

बौद्ध श्राठर्मा • योग पन्द्रह

चार मन के —

- १ सत्य मनो योग
- २ असत्य मनोयोग
- ३ मिथ्य मनोयोग
- ४ व्यवहार मनोयोग

चार वचन के —

- १ सत्य वचन योग
- २ असत्य वचन योग
- ३ मिथ्य वचन योग
- ४ व्यवहार वचन योग

सात काय के —

- १ औदारिक काय योग
- २ औदारिक-मिथ्य काय योग ,
- ३ वैक्रिय काय योग

३

दान सूची : उत्तमोत्तम दान

प्राथमिक दान —

- १ मणि दान
- ० धूप दान
- ३ अर्घ्य दान
- ४ मन्त्र: वचन: दान
- २ वैश्वानर दान

गौतम अंगण —

- १ मणि अंगण
- ० धूप अंगण
- ३ अर्घ्य अंगण (विभक्त अंगण)

प्राथमिक दान

- १ धूप दान
- ० अर्घ्य दान
- ३ अर्घ्य दान
- ४ वैश्वानर दान

व्याख्या

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार का उपयोग कहने है। किसी भी वस्तु का सामान्य या विशेष रूप से जान लेना उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या मात्रारोपयोग कहते हैं। पदार्थों के विशेष धर्म विशेष गुण और विशेष क्रिया का ज्ञान होना—मात्रारोपयोग है। पदार्थों का सामान्य बोध को दर्शन या निराकारोपयोग कहते हैं।

जब दर्शन में वस्तु सामान्य विशेषात्मक मानी है। जब चेतना वस्तु के विशेष धर्म का मुख्य रूप में और उग के सामान्य धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है तो चेतना का उग व्यापार का ज्ञानोपयोग कहा जाता है। परन्तु जब चेतना किसी भी वस्तु के सामान्य धर्म को मुख्य रूप में और उसके विशेष धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तब उसे दर्शनोपयोग कहते हैं। ज्ञान मात्रारोप और दर्शन निराकारोपयोग होता है।

मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की महापता से होने वाला रूपों पदार्थों का ज्ञान। मति से रूपों पदार्थों का भी परमाणु ज्ञान किया जा सकता है।

श्रुत ज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुमारी है। जिस से मति और और धर्म का सम्बन्ध जाना जाता है। जो मति ज्ञान के बाद होता है।

मति और श्रुत का परस्पर सम्बन्ध है। दोनों में कार्य कारण भाव है। मति ज्ञान कारण है और श्रुत ज्ञान कार्य है। ज्ञान ज्ञान है।



अवधि ज्ञान—इन्द्रिय और मन की महायता के बिना आत्मा-द्वारा मर्यादा पूर्वक रूपी द्रव्य का ज्ञान ।

मन पर्याय ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहाया के बिना आत्मा द्वारा सजी जीवा के मनोगत भाषा को जानने वाला ज्ञान ।

केवल ज्ञान—सूत, असूतं, सूक्ष्म, स्थूल आदि त्रिकाल-वर्ती ममस्त पदार्थ और उन की सम्पूर्ण पर्यायों को एक साथ जानने वाला ज्ञान, अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थ और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को बिना किसी बाह्य साधन के मात्रात् आत्मा द्वारा एक साथ जान लेने वाला ज्ञान ।

अवधि आदि तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं, अवधि और मन पर्याय विक्ल अपूर्ण प्रत्यक्ष हैं, और केवल ज्ञान सकल पूर्ण प्रत्यक्ष है ।

मिथ्यात्व-सहचरित मति, श्रुत और अवधि त्रम से मति अनान, श्रुत अज्ञान, और अवधि अज्ञान कहे जाते हैं । यहाँ पर अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, बल्कि कुत्सित ज्ञान मम भना चाहिए । कुत्सित ज्ञान का अर्थ है मिथ्या ज्ञान, विपरीत ज्ञान ।

चक्षुर दर्शन—चक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु द्वारा पदार्थों का जो सामान्य रूप से बोध होता है ।

अचक्षुर दर्शन—अचक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु को छोड़ कर शेष इन्द्रियों से और मन से पदार्थों का जो सामान्य रूप से बोध होता है ।

अवधि दर्शा—प्रवधिदर्शनावरण कर्म के लपोपशम होने पर, इन्द्रिय घोर मन की सहायता के बिना स्त्री पदार्थों का जो मामाद्य बोध होता है ।

काल दर्शन—वेचन दर्शनावरण कर्म के क्षयहोने पर मासान् प्रामा द्वारा सकल पदार्थों का जो मामाद्य बोध होता है, उसे वेचन दर्शन कहते हैं ।

★

१०

गोल दशर्षा कर्म आठ

- | | |
|------------------|----------------|
| १ ज्ञानावरण कर्म | ५ आयुष् कर्म |
| २ दर्शनावरण कर्म | ६ नाम कर्म |
| ३ वेदनीय कर्म | ७ गोश्र कर्म |
| ४ मोहनीय कर्म | ८ अन्तराय कर्म |

व्याख्या

निष्प्रात्य, कषाय घोर योग आदि कारणों से जीव क द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म है । जीव घोर कर्म का यह सम्बन्ध ठीक वैसा ही होता है, जैसा द्रव्य घोर पानी का मषया घर्मि घोर मोह विण्ड का । आत्म-सम्बद्ध पुद्गल द्रव्य को कर्म कहते हैं ।

यद्यपि जीव घोर कर्म का सम्बन्ध घनादि वान में है परन्तु प्रापेश का यह सम्बन्ध घनान वान में रहेगा, सो वास्तुतः



है। खान म जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ अनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध श्रिया के द्वारा जब उम मे मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पडता है। कर्म-रहित जीव अशुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। माघना के द्वारा जीव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सक्ता है।

शास्त्र में मृध्य रूप से कर्म के दो भेद हैं—भाव कर्म और द्रव्य कर्म। राग, द्वेष और कषाय आदि भाव कर्म हैं। भावकर्म के निमित्त से कर्म बगणा के पुद्गला की एक विषय परिणति द्रव्य कर्म है। ऊपर जो कर्म के आठ भेद हैं, वे द्रव्य कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण का आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आँध पर कपडे की पट्टी लपेटने मे वस्तुआ के देखने म रुकावट पडती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करने मे रुकावट पडती है।

जैसे मघन त्रादला से सूर्य के ढक जाने पर भी उनका प्रकाश उनना अवश्य रहता है, कि जिस से दिन रात का भेद समझा जा सके। वैसे ही कैसा भी प्रगाढ़ ज्ञानावरण कर्म हो, उस के रहते हुए भी आत्मा म इनना ज्ञान तो अवश्य रहता है, कि जिस से वह जड पदार्थों से पृथक किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की माम्बन्ध बोधरूप दर्शन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कर्म। यह कर्म द्वार पाल के समान है। जैसे द्वार पाल राजा के दर्शन करने म रुका-

है। खान म जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ ग्रनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध क्रिया के द्वारा जब उस से मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पडना है। कर्म-सहित जीव अशुद्ध और कर्म रहिन जीव शुद्ध होता है। माधना के द्वारा जीव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र मे मुख्य रूप से कम के दो भेद हैं—भाव कम और द्रव्य कम। राग, द्वेष और कषाय आदि भाव कर्म हैं। भावकम के निमित्त से कम वगणा के पुद्गला की एक विशेष परिणति द्रव्य कम है। उपर जा कम के आठ भेद हैं, वे द्रव्य कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण का आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आख पर कपडे की पट्टी लपेटने से वस्तुआ के दखने म रुकावट पडती है, उमी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करी मे रुकावट पडती है।

जैसे मधन पादला मे सूर्य के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश उनना अवश्य रहता है, कि जिस मे दिन रात का भेद समभा जा सके। वैसे ही कैसा भी प्रगाढ़ ज्ञानावरण कम हो, उस के रहते हुए भी आत्मा मे इनना ज्ञान तो अवश्य रहना है, कि जिस से बह जड पदार्थों से पृथक् किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की माम्बन्ध बोधरूप दशन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कम। यह कर्म द्वार-पात्र के समान है। जैसे द्वार पाल राजा के दशन करने मे रुका-

वट डालना है, वैसे ही यह कर्म भी पदाथों वा सामान्य बात करने में स्कावट डालना है।

वेदनीय कर्म—जो अनुभूत और प्रतिभूत विषयों से मन्दे सुख और दुःख रूप में वेदन प्रयत्न अनुभव किया जाय। यह कर्म मधु लिप्ट तलवार की धार को चाटन कहलान है। काले समय क्षण भर को सुख, परन्तु बाद में दुःख होगा है। कालीय कर्म की भी यही स्थिति है। वेदनीय कर्म का दुःख अनुभव है ही, किन्तु सुख भी अन्ततः दुःख रूप ही है।

मोहनीय कर्म—जो कर्म आत्मा को माहित करने, मने बुरे के विवेक से शून्य बना देता है, जो मद्यपान शिरा प्रत्या है, वह कर्म माहनीय है। यह कर्म भय कर्मों के शून्य है। यह मदिरा के मद्य होना है। जैसे मद्यपान शिरा विवकन हो जाता है, वैसे ही माहनीय कर्मों से विवक शून्य हो जाता है। यह कर्म आत्मा के यदमपान शिरा का धान करता है।

आयुष कर्म—जिस कर्म के रहन प्राणज मन्दे रूप में जीता है, और पूरा होने पर मर जाता है। आयुष कर्म के ममान है।

नाम कर्म—जिस कर्म के उदय के मने शक्ति, कभी मनुष्य और कभी देव कर्मों का है, कभी जीव को ऐन्द्रिय आदि नानाविध कर्मों का है। यह कर्म चित्रकार के समान माने जाय। यह कर्म नाना चित्र बनाना है, वैसे नाम कर्मों के चित्रकार बनाता है।

- ८ निवृत्ति वादर सम्पराय गुण स्थान
 ९ अनिवृत्ति वादर सम्पराय गुण स्थान
 १० सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान
 ११ उपशान्त मोह-गुण स्थान
 १२ क्षीण-मोह गुण स्थान
 १३ सयोगी केवली गुण स्थान
 १४ अयोगी केवली गुण स्थान ।

ध्यास्या

आत्मा की अशुद्धतम दशा से लेकर शुद्धतम दशा तक, मन्त्र अवस्था से लेकर मुक्ति अवस्था तक प्रौर जीव की दृढ़ स्थिति से लेकर मुक्त स्थिति तक—पहुँचने के लिए चौन्हा दृष्टिकान् stages मानी गई हैं, जिन्हे गुण स्थान अर्थात् विगम दृष्टिकान् कहते हैं । गुणस्थान का अर्थ है—आत्मा की स्थिति-विशेष । दृढ़ (आत्मशक्ति) क स्थान (क्रमिक विकास) को गुणस्थान कहा जाता है ।

मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—मिथ्या (तत्त्व अज्ञान के दिवनी) है, दृष्टि जिसकी वह मिथ्या दृष्टि, उसका गुणस्थान मिथ्या दृष्टि गुणस्थान । यह जीव की निम्नतम दशा है ।

सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—मन्त्र के आस्वाद मात्र के सहित जो दृष्टि वह सास्वादन । सम्यग्दृष्टि, नन्का गुणस्थान सम्यग्दृष्टि गुणस्थान अनन्तानुवधा कानर के उदय से मन्त्र के पराङ्मुख मिथ्यात्व की धार भुक्त है शीव की स्थिति ।

अन प्रस्तुत गुण स्थान के सम ममय-वर्गी ममस्त् जीवो के मध्यवर्ताय भिन्न अर्थान् 'युनाधिक शुद्धि वाले हान है ।

अनिरुति वादर सम्प्राय गुण स्थान—प्रस्तुत गुण स्थान म भी वादर सम्प्राय अर्थात् स्वयं कथाय वा अनिरुति रहता है । अत यह भी वादर-सम्प्राय कहलाना है । पूर्ववर्ती अनिरुति शब्द का अर्थ अनिश्चयता है । अत नवम गुणस्थान मे आ जीव मममय-वर्गी होने है उा सबके मध्यवर्ताय एक समान अर्थान् तुल्य शुद्धि वाले होने है ।

गूढम सम्प्राय गुण स्थान—गूढम अथ म सम्प्राय कथाय (मात्र लोभ) है जिसमें वह गूढम सम्प्राय गुण स्थान । इसमें चार कथाया में से कवल गूढम लाभ रह जाता है ।

उपशान्त माह गुण स्थान—उपशान्त अर्थात् अन्तमुद्गम क लिए छा त हो गया है, माह कम जिसमें, वह उपशान्त माह, उमका गुणस्थान, उपशान्तमोह गुणस्थान । इसमें माह (मात्र) का उपशान्त हाता है, अथ नही ।

क्षीण मोह गुण स्थान—क्षीण अर्थात् समूह नष्ट हो गया है, माह कम जिसका, वह क्षीण माह, उमका गुण स्थान क्षीण मोह गुण स्थान । इसमें मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है ।

मयोगी केवली गुण स्थान—योग का अर्थ मन, वचन और वाय का व्यापार है । मयोगी अर्थात् योग युक्त है जो वह मयोगी केवली, उमका गुण स्थान, मयोगी केवली इसमें आत्मा और सर्व दर्शी हो जाता है ।



ध्यात्वा

इन्द्रिय पांच है, धन मुख्यतया उनके विषय भी पांच हैं—
शब्द, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श। विस्तार की शक्ति से इनके
तेईग विषय हो जाते हैं। पांच इन्द्रिय के विषय तेईग और विकार
दा गी चालीस होते हैं।

संगार के समस्त पदार्थ दा विभागा में विभक्त हैं—मूल और
अमूर्त। जिनमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हा, वह मूल, गैर गभी
अमूर्त। मूर्त अर्थात् पौद्गलिक पदार्थ ही इन्द्रिय-ग्राह्य हो
सकते हैं, अमूर्त नहीं,—जैसे आत्मा आदि।

प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय का ही ग्रहण करती है। दूसरे
के विषय को नहीं। रूप का चक्षुः ही ग्रहण करती है। घ्राण एवं
स्पर्श आदि नहीं। मयत्र यही अम है।

विकार

पांच इन्द्रिया व दो गी चालीस विकार हात हैं और वे इस
प्रकार समभन चाहिए—

श्रात्र इन्द्रिय क तीन विषयो व १२ विकार—जीव शब्द,
अजाव शब्द और मिश्र शब्द। तीन शुभ और तीन अशुभ। इन
छह पर राग और छह पर द्वेष। ये १२ विकार हुए।

चक्षुः इन्द्रिय क पांच विषयो व ६० विकार—५ सचित,
५ असचित और २ मिश्र। ये १५ शुभ और १५ अशुभ। इन
३० पर राग और ३० पर द्वेष। ये ६० विकार हुए।

अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

आकाशास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

१ दशर्वा काल

पुद्गलास्तिकाय के चार भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश



व्याख्या

पुण्य सुख रूप होता है। पुण्य क्या है? शुभ योग से बंधने वाला शुभ कर्म। पुण्य में आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कीर्ति, दीर्घ आयुष्य और सुपरिवार आदि सुख के साधन, जीव को उपलब्ध होते हैं।

यहाँ पुण्य के जा नव भेद किए गए हैं, वे वास्तव में पुण्य के भेद नहीं, किंतु पुण्य के कारण हैं, जो नव विभाग में विभक्त किए गए हैं।

जीव इन नव कारणों से पुण्य का बन्ध कर सकता है। किसी दुस्वित्त को अथवा सदाशारी व्यक्ति को स्थान, दाय्या और वस्त्र देने से, शरीर में किसी की सेवा करने में, मधुर एवं हिनकर वाणी बोलने से, शुभ विचारों का चिन्तन करने से और किसी पूज्य पुरुष को वन्दन करने से।

पुण्य मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, शुभ वर्ण शुभ गन्ध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, मीभाष्य, सुस्वर, आदेय, यज्ञ आदि ४० प्रकार से भोगा जाता है। पुण्य की वांछिते समय दुःख और भोगते समय सुख मिलता है। आत्म विवाम में पुण्य कश्चित् निमित्त है, अतः उपादेय है, परन्तु साधना की उच्च अवस्था में पुण्य भी हेय है।

१७ माया मृपा (कपट-सहित मिथ्या भाषण)

१८ मिथ्यादर्शन शल्य (कुदेव, कुगुरु, और कुधर्म पर श्रद्धा)

व्याख्या

अशुभ योग से बँधने वाले अशुभ कर्म को पाप कहते हैं। क्योंकि वह आत्मा को मलिन बनाता है। पाप के उदय से जीव को दुःख और पीडा मिलती है। पाप बाधते समय सुखकर किन्तु भोगते समय दुःखकर प्रतीत होना है।

अठारह प्रकार से पाप बाधा जाना है, और ज्ञानावरण दशनावरण, अमानावेदनीय, माहनीय, नरक गति, तिर्यचगति, अशुभ वण आदि ८२ प्रकार से भोगा जाता है। पापस्थानो के मेवन से जीव भारी हा जाता है, और नीच गति में जाना है। इनके त्याग से जीव हल्का हो जाता है, और उच्च गति प्राप्त करता है। पाप श्रेय ही होना है, कभी उपादेय नहीं होना।

पाप तत्त्व के ये अठारह भेद पाप उध के कारण हैं। कारण म काय का उपचार मानकर ही पापतत्त्व के भेद बनाए गए हैं।

आत्मव तत्त्व के बीस भेद

पाँच अवत—

१ प्राणातिपात

२ मृपावाद

३ अदत्तादान

४ मैथुन

५ परिग्रह

पाच इन्द्रिय—

१ श्रोत्रेन्द्रिय प्रवृत्ति

२ चक्षुरिन्द्रिय प्रवृत्ति

३ घ्राणेन्द्रिय प्रवृत्ति

४ रसनेन्द्रिय प्रवृत्ति

५ स्पर्शनेन्द्रिय प्रवृत्ति

पांच आस्रव—

१ मिथ्यात्व आस्रव

२ अविरति आस्रव

३ प्रमाद आस्रव

४ कषाय आस्रव

५ अशुभ योग आस्रव

तीन योग—

१ मन प्रवृत्ति

२ वचन प्रवृत्ति

३ काय प्रवृत्ति



मूचि = सूई पाट आदि अन्य कोई भी वस्तु यदि अविवेक से ली जाती है और अविवेक में रची जाती है, तो यह भी आसव है ।

इन बीस कारणों में आत्मा कर्मों का संशय करता है, इन में आसव है । आसव ससार का कारण है । इनमें ससार की वृद्धि होती है ।

सर्व के बीस भेद

पाच धत—

- १ प्राणातिपात विरमण
- २ मृपावाद विरमण
- ३ अदत्तादान विरमण
- ४ अब्रह्मचर्ये विरमण
- ५ परिग्रह विरमण

पांच इन्द्रिय—

- १ श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह
- २ चक्षुरिन्द्रिय निग्रह
- ३ घ्राणेन्द्रिय निग्रह
- ४ रसनेन्द्रिय निग्रह
- ५ स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह



पाँच सवर—

- १ सम्यक्त्व सवर
- २ व्रत सवर
- ३ अप्रमाद सवर
- ४ अकपाय सवर
- ५ शुभयोग सवर

तीन योग—

- १ मनो निग्रह
- २ वचन निग्रह
- ३ काय निग्रह

दो यतना—

- १ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना ।
- २ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना ।

व्याख्या

ग्रासव का निरोध सवर है । सवर ग्रासव का विरोधी तत्व है । सवर का अर्थ है, सवरण अर्थात् संयम । जिन कारणों से ग्रासव को रोका जाता है, वे सवर कहे जाते हैं ।

जीव रूप तालाब में, कर्म-रज रूप जल को आने से सवर रूप डाट के द्वारा रोकना, उसे सवर कहते हैं । सवर से आत्मा

गुड़ एवं निमल बनना है। क्योंकि मकर की मायना में कम मल प्रात्मा में नहीं आ पाता।

हिंसा से विरति, प्रसक्त्य से विरति, चारी से विरति, अन्नह्रास्यं से विरति और परिग्रह से विरति—ये पाँच घन रूप सवर हैं। सवर घन का कारण है।

पाँच इन्द्रिया का निग्रह करना, उनकी अनुभ प्रवृत्ति का रोकना—यह पाँच इन्द्रिया का निरोधरूप सवर है। निपृथीत इन्द्रिय सवरूप है।

अथार्थ श्रद्धान, विरति (व्रत), अन्नमाद अकणाय और गुभ योग—ये पाँच सवर हैं। क्योंकि इनमें आत्मा की शुद्धि होती है।

मनोनिरोध, वचन निरोध और वाय-सुषुम्—ये तीनों भी सवर रूप हैं। इन तीनों योगों का गुभव सवर है।

यदि तत्त्व-दृष्टि से देखा जाए, तो योग मात्र आस्रव है। भवे ही वह शुभ हो, या अशुभ। शुभ योग पुण्यास्रव है और अशुभ योग पापास्रव। यहाँ शुभ योग को जो संवर कहा है, वह अशुभ में निवृत्ति-रूप है। अतः शुभ की शुद्धता में लक्षणा है।

रजोहरण, पात्र आदि भण्डापकरण तथा मूर्ति आदि अथ विनी भी वस्तु की यतना से सेना आर यतना से रतना—यह भी सवर है।

इन बीस कारणों से आत्मा आस्रव को रोकता है। अतः ये सवर हैं। संवर मोक्ष का कारण है। इसकी शुद्ध साधना से संसार के बन्धन बट जाते हैं।

मोक्ष तत्त्व के चार भेद

- | | | | |
|---|--------------|---|------------------|
| १ | सम्यग् ज्ञान | ३ | सम्यक् चारित्र्य |
| २ | सम्यग् दर्शन | ४ | सम्यक् तप |

व्याख्या

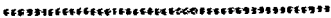
नव तत्त्वा में यह अन्तिम तत्त्व है। मंत्र गौर निजरा की साधना से आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

बन्ध और बाध के कारण का जब अभाव हो जाता है, और जब आत्म विकास पूर्ण हो जाता है, तब आत्मा की उम शर्वथा और सबदा शुद्ध स्थिति को मोक्ष कहा जाता है। आत्म गुणा का पूण विकार ही वस्तुतः मोक्ष है।

मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण—एकैवक शब्द हैं। कर्म-बद्ध आत्मा का बन्ध मुक्त हो जाना—यह मोक्ष है। मोक्ष आत्मा को एक पूण अखण्ड शुद्ध अवस्था है। जहाँ पूणता होती है, वहाँ विभिन्न प्रकार के भेद एवं प्रकार नहीं होते। इसीलिए प्रस्तुत में मोक्ष तत्त्व के भेद उताने हुए उमकी प्राप्ति के चार साधन बनाए गए हैं।

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के उपर्युक्त चार साधन शास्त्र में कहे गए हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र्य और विवेक पूर्वक तप। जीव इन साधनों से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जीव का स्वभाव ऊर्ध्व गमन है। वह जो अधोगमन और तिर्यग् गमन करता है, उसमें जीव के बन्ध कारण हैं। जैसे लेप गहिन तुम्हा जन म नीचे बैठ जाता है, परन्तु उम पर से मिट्टी



क्षीण कृपाय आत्माया को छाडकर शेष ममत्त ममारी जीवो म यह आत्मा हानी है

याग आत्मा—योग मन, वचन एवं वाय का व्यापार है । योग युक्त आत्मा का याग आत्मा कहते हैं । अयोगी केवली और निद्रा म यह आत्मा नहीं होती । शेष सभी जोव योग वाले है ।

उपयोग आत्मा—उपयोग अर्थात् ज्ञात और दर्शन । उपयोग युक्त आत्मा को उपयोग आत्मा कहते हैं । उपयोग आत्मा मिद्व शो संसारी सभी जीवों में होती है । क्योंकि उपयोग आत्मा का लक्षण है । अत उरवात गून्ध कोई आत्मा नहीं हा मरती ।

ज्ञान आत्मा—ज्ञान आत्मा का निज गुण है । ज्ञान युक्त आत्मा का ज्ञान आत्मा कहते हैं । यह आत्मा सभी जीवों में है । परन्तु जब ज्ञान का अर्थ सम्यग्ज्ञान करे, तब यह आत्मा केवल सम्यग्दर्शित जीवों में रहेगी । क्योंकि मिथ्या दृष्टि में ज्ञान नहीं, अज्ञान होगा है ।

दर्शन आत्मा—दर्शन अर्थात् सामान्य वाय । दर्शन-युक्त आत्मा को दर्शन आत्मा कहते हैं । यह आत्मा सभी जीवो म होता है । अथवा सम्यग्दर्शन रूप आत्मा सम्यग् दृष्टि जीवो में ही हाती है ।

चारित्र आत्मा—चारित्र अथवा अनुभ म निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति । चारित्र युक्त आत्मा को चारित्र आत्मा कहते हैं । यह आत्मा विरति-सम्पन्न जीवो में होता है ।

वीर्य आत्मा—वीर्य अर्थात् जोव की शक्ति-विशेष । वीर्य-युक्त आत्मा को वीर्य आत्मा कहते हैं । यह आत्मा सभी जीवों में हाती है । अन्तर केवल इतना ही है कि संसारी आत्माओं का वीर्य सत्करण अर्थात् क्रियात्मक वीर्य है, और निद्रा आत्माओं का वीर्य, लब्ध अर्थात् शक्ति रूप वीर्य है ।



३६

शोच गौतमद्वयैः द्रष्टव्यं चौराणि

गात्रं नगरं वा एकं द्रष्टव्यं—

१	रत्नाप्रभा	५	गृध्रप्रभा
२	शर्वरा प्रभा	६	तप प्रभा
३	शम्भुप्रभा	७	महाभय प्रभा
४	वक्र प्रभा		

दश भयनं पतिं ये दृष्ट्वा द्रष्टव्यं—

१	अगुरुकुमार	६	श्रीवकुमार
२	नागकुमार	७	उदधिकुमार
३	गुणवन्तुमार	८	दिशानुमार
४	विष्णुतुमार	९	पवनकुमार
५	अग्निकुमार	१०	स्तनितकुमार

पात्रं स्याद्वरं ये पात्रं द्रष्टव्यं—

१	पृथ्वी वाय
२	अप् वाय
३	तेजम् वाय
४	वायुवाय
५	यनस्पति वाय

तीन विक्लेन्द्रिय के तीन दण्डक—

- १ द्वीन्द्रिय
- २ त्रीन्द्रिय
- ३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक—

- १ त्रियञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
- १ मनुष्य का एक दण्डक
- १ व्यन्तर देव का एक दण्डक
- १ ज्योतिष देव का एक दण्डक
- १ वैमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के कारण शुभागुण कर्मों का संचय करना रहता है । फिर उन शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए चार गतियों में पारभ्रमण करता है । घन जहाँ जीव स्वकृत कर्मों का फल भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं । अर्थात् कर्म फल या दण्ड भोगने के स्थान को इस धीरे में २४ भागा में विभक्त करके उन स्थानों का नाम दण्डक रख दिया गया है ।

नरक गति का दण्डक एक, त्रियञ्च गति के नव, मनुष्यगति का एक, ग्रीह देवगति के द्वैरह । इस प्रकार सब मिलानर चौबीस दण्डक होते हैं ।



१७

पौल मतसद्वर्षो • लग्ना छद्

१	कृष्ण लेश्या	५	तेजो निरया
२	नील निरया	५	पद्म लग्ना
३	कापोत लेश्या	६	गुरन लेश्या

व्याख्या

जीव के शुभाशुभ परिणाम का निर्या कहत है । अथवा त्रिग परिणाम के कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो उन निर्या कहते हैं । निर्या के दो भेद हैं भाव और द्रव्य । भाव निर्या विचार रूप और द्रव्य निर्या पुद्गल रूप प्राणी है ।

अथवा निर्या के दो भेद हैं - धर्म निर्या और अधर्म लेश्या । पक्षी के तीन अधर्म निर्या और अगनी तीन धर्म निर्या । इनको शुभ निर्या और शुभ लेश्या भी कहते हैं ।

दृष्ट्य लक्ष्या -

अतिरोद्ध मदा मोषी, मरमरी धर्म यज्ञिन ।
निर्दयी वैर-समुच्छ, कृष्ण-लेश्याधिको उर ॥

कृष्ण लेश्या वाले जीव के विचार अत्यन्त दूर होने हैं, यह प्राणी होता है, यह ईर्ष्यालु होता है, उमका जीवन धर्म भूय होता है वह दया रहित होता है, और उमके मन में मर वैर-विरोध की भावना रहती है ।



ध्यान चार प्रकार का है। पहल दो समार के कारण है। प्रन वे हेय है, त्याज्य है। अन्त के दो मोक्ष के कारण हैं। अन्त वे उपादेय हैं, ग्रहण करने योग्य हैं।

ध्यान, ध्याता और ध्येय—इसका त्रिपुटी कहते हैं। ध्यान करने वाला ध्याता होता है। ध्येय अर्थात् जिसका ध्यान किया जाए, जिसका चिन्तन किया जाए। ध्याता ध्यान के द्वारा ध्येय का प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसको ध्यान की साधना कहने हैं।

ध्यान के दो भेद है—अशुभ और शुभ। पहले के दो ध्यान अशुभ हैं, पिछले दो शुभ हैं।

आर्त ध्यान—मनाज्ञ एव प्रिय वस्तु के वियोग में और अमनाज्ञ एव अप्रिय वस्तु के संयोग में, चित्त में जो एक प्रकार की अन्वेषण एकाग्र चिन्तना होती है, उसका आर्तध्यान कहते हैं।

रीढ़ ध्यान—हिंसा में, असत्य में, चारी में और धन आदि के ममत्वभाव में, मन को एकाग्र करना, मन को जोड़ना, रीढ़ ध्यान है। इसमें परिणाम अत्यन्त क्रूर होते हैं। इसमें, जीव के रूढ़ अर्थात् भयकर एव निर्दय भाव रहते हैं, अतः इस को रीढ़ ध्यान कहते हैं।

धर्म ध्यान—जिसमें श्रुत और चारित्र्य रूप धर्म का चिन्तन किया जाता है, उसे धर्म ध्यान कहते हैं। सूत्राथ का चिन्तन करना, प्रती का विचार करना, तथा समार की अमारता का मनन करना—यह धर्म ध्यान है।

२५

पोल पञ्चमिनी : पारित्रिणी

- १ सामागिक पारित्रिणी
- २ ऐदोमधारा पारित्रिणी
- ३ पण्डित विरुद्धि पारित्रिणी
- ४ मूढम मण्णराय पारित्रिणी
- ५ मण्णराय पारित्रिणी

दशाहारा

पारित्रिणी को निम्न स्वयंसेवक शिष्ट रणो का प्रथम पारित्रिणी है। पारित्रिणी, विरुद्धि, मण्णराय, और मण्णराय से मण्णराय मण्णराय है। पारित्रिणी का धर्म है—मण्णराय से निरुद्धि और मण्णराय से प्रवृत्ति। मण्णराय मण्णराय के विरुद्धि को पारित्रिणी कहा जाता है।

पारित्रिणी भाग में पारित्रिणी मण्णराय से धर्म से, उद्योग से और मण्णराय में होने वाले विरुद्धि पारित्रिणी को पारित्रिणी कहते हैं। मण्णराय भाग का मण्णराय मण्णराय होकर मण्णराय में प्रवृत्त होने भी पारित्रिणी कहा जाता है। पारित्रिणी के सामागिक पारित्रिणी नाम भी है।

सामागिक पारित्रिणी—सामागिक मण्णराय मण्णराय। मण्णराय का मण्णराय को सामागिक पारित्रिणी कहा जाता है। मण्णराय मण्णराय



परिहार विगुद्धि चारित्र्य—जिस चारित्र्य में परिहार नामक विशेष तप किया जाता है, उसे परिहार विगुद्धि चारित्र्य कहते हैं। परिहार तप से आत्मा की विशेष शुद्धि होती है। परिहार अर्थान् सध से पृथक् होकर विविष्ट तपस्या से आत्मा की शुद्धि करना, परिहार विगुद्धि है।

परिहार नामक तप की विधि सक्षेप में इस प्रकार है—

“नव साधुओं का गण परिहार तप प्राग्भूत करता है। इनमें से चार तप कर्त्त हैं, और चार उनकी वैयावृत्य (भया) करते हैं, तथा एक उनका गुरु (निर्देशक) रूप में रहता है।

पहले चार साधु छह मास तक उपवास, बेला, तला, चौला, पचौला, तथा आयविन आदि तप करते हैं। फिर सेवा करने वाले छह मास तक तप करते हैं, और तप करने वाले सेवा करते हैं। फिर गुरु पद पर रहा हुआ साधु भी छह मास तक तप करता है। इस प्रकार अठारह मास में इस परिहार तप का कल्प पूरा होता है।

सूक्ष्म सम्पराय चारित्र्य—सम्पराय का अर्थ कषाय होता है। कषाय चार है—क्रोध, मान, माया और लोभ। परन्तु इस चारित्र्य में केवल सूक्ष्म सज्वलन रूप लाभ कषाय ही शेष रह जाता है। अतः इसका सूक्ष्म सम्पराय चारित्र्य कहते हैं। यह चारित्र्य दगाव गुणस्थान का है।

